समवेत, बीकानेर

छोटे छोटे सच

अरविंद ओझा
देवदीप
सुशील पुरोहित

प्रकाशक : समवेत, नवलसागर, बीकानेर-334 001/मुद्रक : सांखला प्रिन्टर्स, सुगन निवास, बीकानेर
प्रथम संस्करण, 1985 /मूल्य : तीस रुपये मात्र आवरण : भारत अशेष

Chhote Chhote Sach/Collection of poems by Arvind Ojha, Devdeep &
Susheel Purohit / Price : Rs. 30 00

"मनुष्य अस्तित्व की हर वस्तु
स्वतन्त्रता से ही उपजनी चाहिए
उसी के बीच बढ़नी चाहिए
और यदि यह
स्वतन्त्रता की विरोधी सिद्ध हो तो
निःसंकोच ध्वस्त कर दी जानी चाहिए ।"

—बर्दिएफ

अरविंद ओझा



अपने आस पास का सच

☐

कविता एक विच्छिन्न और सनकीपन की वस्तु नही है, बल्कि मानव की सर्वाधिक आधारभूत रुचियों में से ही उसका जन्म होता है.

अपना आस पास होता है, अपने आस पास का सच होता है मेरी कविताओं मे.

दफ्तर की मेज पर या सरकारी दौरे में गांव गांव घूमते या अपने कैमरे से दृश्य देखते, घर में बिट्टू के साथ खेलते या दोस्त की चिट्ठी पढते हुए न जाने कहा, कब कोई बीज मन की गीली जमीन को छू जाता है जिसे मैं धूप और हवा देता हूं एक लय गूजती है, जिसके अंकुरण पर, जिसे सुनकर मन प्रसन्न होता है वही कविता होती है मेरी

कविता एक खास परिस्थिति, भाव और दृश्य के प्रति मेरी प्रतिक्रिया को ही व्यक्त करती है

कुछ कविताओ का प्रकाशन एक क्षण रुककर खुद का मूल्यांकन करना भर है.

अरविन्द ओझा

बन जाता है
गरम लाल लहू

हम ऊंट बन जाएं
और पी लें
कई दिनों का पानी-
गरम लाल लहू
फिर निकलेगी
तह से
दबी सहमी-सी बैठी चिड़िया
तब नहीं पकड़ पायेंगे हमें
वक्त के बाज

जर्रा जर्रा कुरेदो
बर्फ को
और ऊंट बन जाओ

•

लाल आंख वाला समय

लाल आंख वाला
समय
बैठ गया है जमीन पर
उकड़ू सुस्ताने
और
पीने लगा है
फैक्ट्री की चिमनियों की बी
चुप चुप
और हम
उंगलियों में डाले हैं
उंगलियां
सफेद सिगरटों-सी

दोनों पूर्ण संवेदन हैं
उंगलियां और सिगरेटें

हम उंगलियां नहीं पीते
सिर्फ छूते हैं
और छूना
कितना सुखद स्वाद है-
खट्टे मीठे सन्तरों-सा
जुलाई की पहली बरसात-सा
गुलाबी रंगों वाली गंध-सा

लाल आंख वाले ने
ओढ ली
धीरे धीरे
नींद की काली चादर

नींद की गहरी चादर
और फिर ऊगी
एक सफेद आंख
और देखने लगी
सब कुछ -
हमारे अन्दर का
हमारे बाहर का
मन की चमगादड़ें
आकांक्षाओं के युक्लिप्टिस
कुंठाओं के कैक्टस
लगावों के लाल गुलमोहर
निराशाओं के पीले अमलतास
धमनियो के सन्नाटे
शोर शिराओं का
और ताजमहल हुए
हम-मैं और तुम
नया इतिहास बनाते
संगमरमरी संगमरमरी

यह मेरी यात्रा नही है
यह तुम्हारी यात्रा नहीं है
गणित है यह
एक मध्य बिन्दु से
बंधा, त्रिज्या का
एक छोर
गतिमान है दूसरा
एक निश्चित परिधि में
घूमता

आकाश

मत करो
मेरे शहर का
आकाश
तुम इतना मैला
कि मैं
छत से
देख ही न पाऊं
उजले-मुंह का चांद
कि चांद ही तो बचा है
लोहे के इस सख्त शहर में
बहुत अच्छे दिनों की याद
कि
जब नही
ऊगे थे शहर में
चिमनियों और सायरनों के पेड़
अब शहर
बस शोर है
कि चुप हवा भी नहीं अब
काले हो गए है
चेहरे सबके
आकाश बाकी और है

धूप कभी
उतरी नहीं
इन दफ्तरों की मंजिलों में
कारखानों की भट्टियों में
बंद कमरों की खिड़कियों में

बस
सूरज के अंधेरे ही
दीखे हैं
लम्बी सड़क के छोर तक
फुटपाथ पर चलते

खुली रहने दो
खिडकी
आकाश की ही
कि मरने पर तो
निकल पायें
कहीं दूर
शहर से

सुनसान दोपहरी में

गुमसुम
बैठी है
छोटी छोटी परछाइयां
पेड़ों के नीचे
सुनसान दोपहरी में

तमाम घरों की
सारी खिड़कियां
बंद है
और
एक चिड़िया
ढूंढ रही है
कोई छतदार जगह

गली
सिकुड़ गई है
बांई तरफ के घरों व
कम धूपदार जड़ों में
सुस्ताने

मुन्ना लौटा है
स्कूल से
सिर पर रखे बस्ता
कुल्फी खाता

थमो नीली नदो

सहसा
तुम क्यों थम गईं
नीली नदी
तुम
मिलने के अंतिम क्षण के
अंतर पर

आकाश त्यागा
परम्परा के बर्फ ढके
पहाड़ छोड़े तुमने तो
तेज तेज दौड़ी थी
तुम ही तब तो
अब क्यों थम गयी
गति शून्य हो
उत्ताल लहरों की
सांसों के
मिल भर जाने की दूरी पर !

अलसाया
सागर हूं-निंदियाया
नदी नहीं
पर तुम नदी हो,
नीली नदी !
और नदी की नियति
गति है–
बंधों को तोड
तटों को छोड़
अनवरत गति, अविराम

सागर में-
मैं मर जाऊंगा
थमो रहो
तनिक देर और यूं ही
तुम अगर

•

तुम कविता थीं तब

तुम कविता थी तब
मैं था
लम्बा गलियारा-सा

गलियारे का
दरवाजा था
दरवाजे पर देहरी थी
फिर बाहर
सागर था
कोलाहल का

तब तुम नदी थीं
कविता—सी
पारदर्शी नीले जल की
मुझ गलियारे में
बहकर
कुछ देर
ठहर जाने को आतुर
देहरी पर

पर
बाहर था सागर
देहरी के
और नदी
कविता नहीं होती आखिर
कविता सिर्फ स्मृति होती है

गलियारे के
दरवाजे की देहरी की

तुम नदी थीं
समा गईं इसीलिए
बाहर के सागर में
कोलाहल के

आओ बतियाएं

आओ बतियाएं
ऊलजलूल ही कुछ
बहुत दिन
तिलमिलाया हूं
शहर के
स्याह सन्नाटों में मैं

चुप रहना
सहज स्वीकृति ही तो है
सब कुछ
सहते रहते जाने को

कब तक
सब कुछ
सहते रहेंगे हम
गलों में
चीखों के समुन्दर दबाए ?

आज आओ
गरजने दें समुद्र को
उछलने दें
उत्ताल तरंगों को
चांद छू आने दें
अधूरी कामनाओं के
बरसने दें उन ठहरे-सहमे -
बादलों को

मच जाने दें

एक शोर
कि सन्नाटों से
कहीं अधिक
सुखकर होता है वह

वतियाएं आओ
इस चुप को तोड़ें
कुछ वोलें
कुछ भी वोलें
अब नहीं सहे जाते
ये चप के सन्नाटे

आओ वतियाएं
ऊलजलूल ही कुछ



लोग और मरी हुई लड़की

मैंने सुनी है
एक तेज चीख
और फिर सुनी है
एक गहरी खामोशी
और फिर
देखा है
सबको एक दूसरे का मुंह ताकते
फिर पढ़ी है–
एक ग्यारह साल की लड़की की
पार्क मे लाश मिलने की खबर
पुलिस और डाक्टरी जांच
कि सामुहिक बलात्कार के बाद
हत्या का मामला है।

फिर कुछ लोगों के नाम
दबी जुबान
कान दर-कान फैले है

फिर मैंने देखा है
खौफ़ का सन्नाटा
और सुना है
माओं का अपनी बेटियों को
डांटना धमकाना
पान की दूकान पर
लोगों को
मरी हुई लड़की के
गुप्तांग की स्थिति पर
बातें करते

फिर मैंने देखा है
संदिग्ध व्यक्तियों को
रातोंरात तेज जीपों में
राजधानियां जाते
जहां
हमारे विधाता रहते है
विधायक पुरियों मे

फिर .. ??

फिर धीरे धीरे
सब कुछ बदल गया
पुलिस और गवाहों के बयान
और
डाक्टरी जांच की रपट
संदिग्ध और असदिग्ध

मैंने देखा फिर
कानून के लम्बे हाथों
की कमजोरी का लाभ
और फिर–
उन जीपों वालों का
शहर में सामान्य घूमना
खौफ का मिटना
लड़कियों का फिर
सड़क पर निकलना
मैंने सुनी खबर फिर–
'शहर की स्थिति अब सामान्य है'

•

बाहर वाली खिड़की

ऊपरी मंजिल पर
मेरे इस
किराए के कमरे की
बाहर वाली खिड़की
बरसों से टूटी पड़ी है

तब
मेरी बेटी
बहुत छोटी थी

मैं इस खिड़की से
बाहर देखा करता हूँ
बरसों से देखता आ रहा हूँ
या यूं कहूं–
अनायास बाहर का
सब दिख जाया करता है-
इस खिड़की से

बाहर
पहले एक पेड़ था
नीम का पेड़ पेड़ पर
चढ़ी थी गुड़वेल
पेड़ पर फूल लगते थे
मधुमक्खी का छत्ता बनता था
छाया में खेलते थे बच्चे
गायें रंभाती थीं

फिर
एक दिन
एक साहब आए
कोई नई योजना लाए

फिर ?
फिर तो पेड़ कटा
मधुमक्खियां गईं
बच्चे घर के अंदर आए
फिर
धीरे धीरे वह बाहर
बन गया एक बाजार
एक व्यस्त बाजार
और लोग
बन गये कुशल व्यवसायी
कुशल खरीदार
मेरी खिड़की के पास से ही
खिंच गए
बिजली और टेलीफोन के तार

अब
मुझे नहीं दिखती
बाहर की वह धूल
जिस पर नीचे वाले बाबा
छिड़कते थे रोज शाम को पानी
नहीं दीखती
वह पक्की काली सड़क भी
जो मेरे देखते देखते बनी थी
दीखती है
बस भीड़
भीड़ के लोग
लोगों के एक दो चेहरे
एक-से हाथ

एक सी मुद्राए

अब
मेरी बेटी
बडी हो गई है
स्कूल जाने लगी है

आज
टाग दिया उसने
उस टूटी खिडकी पर
एक बडा कलेण्डर
जिसमे
पहाड है
नदी ह
और फूल है
लाल पीले

वह नहाती है

वह नहाती है
नदी में
होकर निर्वस्त्र

घेर लेने देती है
वह
बहते बहते
निर्मल जल को
अपनी देह
बांह फैला फैला
करती है ख़ुद भी
आलिंगन जल का
डूब डूब जाती है
तरल उस प्रेम में
वक्ष तक गले तक
भाल तक बाल तक

निकलती है
नदी से नहाकर
गुदगुदाते हैं
किनारे के कंकर
पांव उसके

फेरने देती है
वह
सूरज को

धूप की अगुलियां
अपनी देह पर

सहलाने देती है
नदी पर बहती हवा को
अपने
काले घने लम्बे बाल

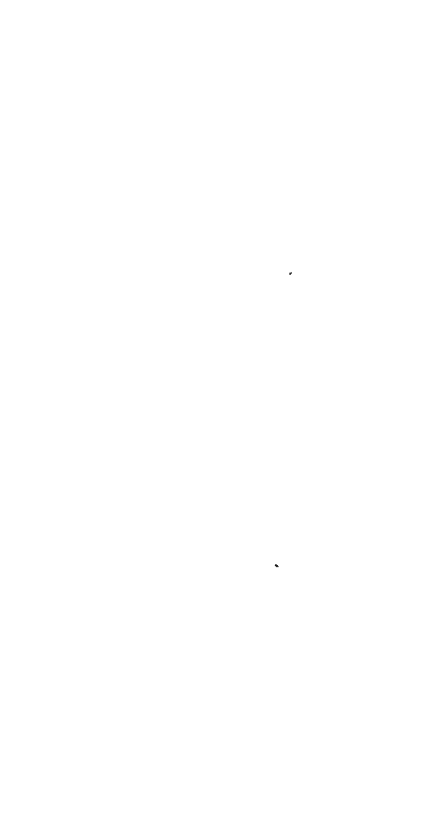
रगड़ लेने देती है
लम्बी घास को
या
खाखरे की डाल को
बांह से

नहीं लगता
उसे डर -
जल से
ककर से
धूप से
हवा से

सुख मिलता है
उसे
उसकी देह को
उसकी आत्मा को
जल से
ककर से
धूप से
हवा से
पत्ते या पत्ते की डाल से

दूर से
आती
आदमी की आहट ही

डरा देती है उसे
छुप जाती है
झाड़ी में
पहनती है कपड़े
डरती है
वह
बस
आदमी की आंख से



देवदीप

ओस बूंदों पर ठहरा सच



दरअसल, अपने बारे में कुछ कहना, एक जिन्दगी जीने से भी ज्यादा कठिन होता है

मुझे पता है, मैं भी एक गलत जिन्दगी जी रहा हूं– कभी बहुत बनावटी और ओढ़ी हुई तो कभी अन्दर तक अपने आप को अकेला करती हुई. इन्हीं अन्तर्विरोधों के बीच कहीं पर कविता होती है– कहीं पर नाटक और मैं पाले बदल बदलकर इस खेल में शरीक होता हूं कभी शिद्दत की ताकत से तो कभी बहुत थका–थका सा. मुझे पता है, रात जो निरालिस मेरी होती है, कभी भी लगातार नहीं होती– एक टुकड़ा धूप, मुंडेरों के अंधेरे लील जाती है. धूप और अंधेरे की संधिरेखा से उपजता है जिन्दगी का सच–ओस बूंदों पर ठहरा जो अभी तक अधूरा है

मुझे पता है, भरे–पूरे जंगल में एक पेड़ ऐसा भी है जो कभी नहीं सूखता–

मुझे उसी की तलाश है.
एक भ्रम ही सही लेकिन जिन्दगी तो
मौजूद है ठीक बीचों–बीच, अपनी
पूरी ताकत के साथ और मुझे कतई
भ्रम नहीं कि 'मैं' अनुपस्थित हूं.

देवदीप

धुनकी

आकाश मे
धुनकी ने
रूई का ढेर फैलाया है
बादलों से
उतरता है/हौले-हौले
धुनकी का पसीना
बूंद-बूंद बन छता है
छप्पर
पकती फ़सल
बरगद पर बैठी चिड़िया
और
आदमी के कन्धों को

•

मूर्त्ति कर्म

शब्द .
कई आकार के पत्थर
कवि ·
चुन-चुनकर तराशता
शिल्पी बना
शब्दों की मूर्त्ति को
ऊर्जा देता
कविता :
वही तराशी हुई मूर्त्ति
कई पलों का
एकजुट हुआ आकार
उद्वेलित करता
उधर से गुजरते
हर पथिक को

•

सिर्फ कविता

कविता
एक फैलाव ही तो है
अनन्त तक
भावनाओं का
हरा–भरा–भरपूर जंगल
या है
आकाश से आकाश तक
बिखरे टुकड़ों का संसार
अंधी
अंधेरी गुफा में
उल्टे टंगे
चमगादड़ की संवेदना है/कविता

शब्दों का
खूबसूरत गुंथा फूल
जो उगता है रोज
आदमी के भीतर से
आदमी तक
यात्रा के इस
अन्तहीन क्रम में
आदमी को
अपने कन्धों पर
ढोती है
सिर्फ कविता

छोटे

शिलाखण्ड से लौटते......

कविता में
लौटने से पहले
सोचा था
उस टूटे शिलाखण्ड़ पर वैठ
चुन-चुनकर
फेंकता रहूगा कंकड़
करता रहूगा
उद्वेलित
जल डूवे अपने ही विम्ब को
सब कुछ वही है
वह टूटा शिलाखण्ड
दरख्तो से लदा पहाड़
परछाइयों का
खामोशी से निगले हुए
नदी का सम्पूर्ण जल
नही है पर
यह विम्ब/प्रतिविम्ब
जो
उद्वेलित हो सकता था
खुद ही मे
उसे तो लौटना था
शिलाखण्ड मे

वापस भीड़ में
भीड़ : यानि एक जंगल
भीड़ : यानि एक सुलगता सवाल
सिर्फ सवाल बनना नही चाहा
उनके हल लिए
लौटा हूं कविता में

•

शब्दों का जंगल

क्या तुम चाहते हो
शब्दों से आग पैदा हो
और कोई चूल्हा जले
तुम
शायद यह भी चाहते हो
शब्द गुब जायें
खेत के सीने में
कविता की खाद हो
और नसों में बह रहे खून
या
जिनावरों के मूत से
सींचा जाये पूरा खेत
ताकि एक फ़सल लहलहाये
भूरे भक्क नाज के दाने उगें
और भरे सबका पोला पेट

इतना सब चाहने से पहले
क्या तुमने सोचा कभी
मुट्ठी भर लोग
जो
संसद के भीतर-बाहर
फैले पड़े हैं
अपने तरीके से
अलहदा-अलहदा
लोगों को भीड़ को
बाट रहे हैं
छांट रहे हैं

काट रहे है
क्या तुम चाहते हो
हम हमेशा की तरह
बंटते रहे
छंटते रहें
कटते रहे
और
उन लोगों के लिए
अखबारों में
उगाते रहें
शब्दों का जंगल
खुद को
कहते फिरें
जनवादी/सर्वहारा
और
मुखौटे टांग
साहित्य के केन्द्र को
मठाधीशों के पलंग पर
प्लाईवुड सा
ठोकते रहें
डनलपी गद्दों-लिहाफों पर पड़े
अंकल/डैड/आंट/मम के
लिजलिजे सन
और
पूंछ हिलाते
उनके
झबरीले टाम को
समर्पित करते रहे
अपनी नई किताब !

•

तो ऽ तो...ऽ ऽ ले......

यहा/इधर
एक गली
गलीचा ओढ़े लेटी है
पसरा पड़ा है सन्नाटा
साय-साय हवा से टूटता ....जुड़ता
टूटता ......जुड़ता
बन्द खिड़की को
एकटक ताकती
भूख पसरी पड़ी है
खामोश !
न कहो/कुछ भी
रख लो जुबान को पेट में
यहा सुसभ्य लोगों में
तुम्हारी याचना
असभ्यता कहलायेगी
देखना
अभी यह खिड़की खुलेगी
अधखायी रोटी लिये
एक मुट्ठी उभरेगी
तो ऽ तो ऽ ले तो ऽ तो ऽऽ ले
सन्नाटे मे
वह एक आवाज गूंजेगी
तब तुम कोशिश करके देखना.

•

धुन्ध

भूरे
दानवी पहाड को
समेटे है धुन्ध
धोक
उगते तो है
उसकी झुकी रोढ पर
आज पर सब
धुन्ध से
दबे–ढके
पूरब में
उगते लालभभूके से
डरती है धुन्ध
वह भी
खाया है आज
कही बादलों के पार
धुन्ध
धोरे–धीरे
पहाड के जिस्म से उतरकर
छाने लगी है
आदमी की आंख में
ताकि
धुधिया जाये
समूची दृष्टि
आदमी की
और फिर
देखने लगे वह भी
धुन्ध की आंखों से.

तब आना तुम

सूखे से
मटियाले आंगन मे
बीचोंबीच खड़ा नीम
पकी हुई
निम्बोलिया
टपाटप-टपाटप
टू……ट ……क………र………
गिरती
टीन की छत पर

आहत करता
रह-रहकर
टपाटप का
अनचाहा
अनवरत क्रम

कल
जब सारी निम्बोलियां
टूटकर
उजाड देंगी नीम को
और
टपाटप का बेसुरा राग
थम जायेगा
तब आना तुम.

•

मेंहदी हसन

बहुत गहरे
भरे गले से
ब्रह्मनाद साधता
सुबह के
उजास
विस्तृत फलक पर
रंगों से
आकार देता
डूबती सांझ की
गहरीली घाटियों से निकलता
लौटता
अन्धेरे में
अन्धेरे से दूर
लिए जाता
अनन्त ऊंचाइयों पर उगे
किसी
वृद्ध-वटवृक्ष की
घनी छांव में
थपकियां देता
सुला देता.

•

तीन छोटी कविताएं

०

तुमने
आज ही जला दिये
सभी दीपक
क्या नही सोचा था कि
कल भी अंधेरा होगा !

००

हरा
जो
शहरीले कैनवास मे
एक रग है
यहा
भरा-पूरा
दूर-दूर तक
एक खेत है

०००

सटाक-सटाक-सटाक
हन्टर
नागफन की तरह
फुफकारा
एक जगल
चीखकर
खामोश हो गया.

●

ठूंठ सा पेड़

लाल-लाल
बंजर जमीन के
गहरे/भूखे
पेट तक
शब्द बोता है आदमी

उगता है
एक ठूंठ सा
मटमैला पेड
अधपके गुठली से शब्द
हर शब्द पर
रोटी लिखा हुआ
आहिस्ता से हाथ बढ़ा
काले-पीले शब्द
तोडना चाहता है आदमी
गध पाते ही
तीखे काटे
घेरते हैं शब्द को

कई कांटों का
लिजलिजा तीखापन
घुपता है
आदमी के मांस में
खुद ही के
खून को
चूसता है आदमी.



तीन छोटी कविताएं

०

तुमने
आज ही जला दिये
सभी दीपक
क्या नहीं सोचा था कि
कल भी अंधेरा होगा !

००

हरा
जो
शहरीले कैनवास में
एक रंग है
यहां
भरा-पूरा
दूर-दूर तक
एक खेत है

०००

सटाक-सटाक-सटाक
हन्टर
नागफन की तरह
फुफकारा
एक जंगल
चीखकर
खामोश हो गया.

•

ठूंठ सा पेड़

लाल-लाल
बजर जमीन के
गहरे/भूखे
पेट तक
शब्द बोता है आदमी

उगता है
एक ठूठ सा
मटमैला पेड
अधपके गुठली से शब्द
हर शब्द पर
रोटो लिखा हुआ
आहिस्ता से हाथ बढा
काले-पीले शब्द
तोड़ना चाहता है आदमी
गध पाते ही
तोखे कांटे
घेरते है शब्द को

कई कांटों का
लिजलिजा तीखापन
घुपता है
आदमी के मांस में
खुद ही के
खून को
चूसता है आदमी.



बूढ़ा गंगादीन

पोरुओं पर
गूंगी उम्र के बरस
गिनता है
बूढा गंगादीन
साठ के ऊपर आठ
आते ही
रुकता
शून्य में ताकता
अनथक दिनों से बनाई
मिट्टी की सुन्दर कल्पना को
तोड़ता है
बूढ़ा गगादीन
कभी
प्रकृति की
सारी अमूर्त सुन्दरता
साचे म ढालता
कभी
समस्त सृष्टि को
गाली बकता
अंधेरे मे
दीवारों के
सामती घेरो को
पीटता है
बूढा गंगादीन.

•

मुझे अभी वह दृश्य देखना है

मौसम
बदल रहा है
हवा ने सूचना दी
पतझड
पेड के मोटे तनों से टकराता
सड़क पर
बिछने लगा है
एक बस्ती
उदासी लेकर
सो गयी है
एक झोंपडी
अकेली औरत और
दिन-दस पुराने शिशु को
धप से बचाये
काठ सी खडी है
पतझड़
झोपडो की खपरैलो मे
घुस चुका है
बस्ती की छतों से
एक चीख
सहमकर गुजर जाती है
तब तक
पतझड़ की
धूप-सी कमोज
खून में डूब चुकी होती
और
धूल मे घिसटते
पतझड़ के पदचिन्हों को

जागती वस्ती
खामोश देख रही है.

सोचता हूं
कब वह वस्ती
पतझड़ के छूटे पदचिन्हों का
पीछा करती हुई
सघन जंगल के बीच
गुफा के मुहाने तक जायेगी
जहां पतझड़
मौसम की सभी फसलों को लपेट
जा छुपा है
मुझे
अभी वह दृश्य देखना है
जब वस्ती
गुफा के मुहाने अड़े
चट्टान का रस
अपनी नसों के
खून में मिलायेगी और
समूचा जगल
एक आदिम चीत्कार से
थर्रा उठेगा
अकेली औरत
गुलमोहर के नीचे
वस्ती और हवा का
शुक्रिया अदा करेगी
इस वस्ती तक
तब
पतझड़
नही आयेगा कभी.

नेपथ्य

मौसम ने
करवट ली
माहौल में चीख पुकार थी
मंच खाली
दृश्य नेपथ्य में जारी था
'ओ मुखौटे पहने व्यक्ति
तुम ही आओ
मंच सम्हालो,
माहौल की चीख पुकार को
अपने स्वर-ओ-अभिनंदन से
तुम ही जरा थाम लो'
उन्हे लड़ने दो
तुम्हारी बारी आने तक
हत्या, बलात्कार, भुखमरी, आतंक का
अभिनय कर
इन्हे बांधो
"वाह, क्या स्वाभाविक अभिनय
यथार्थ की
इतनी सूक्ष्म पकड
यह सब
कहा सीखा तुमने मित्र !"
वह मुस्कराया
और
नेपथ्य में ओझल हो गया
मंच फिर से खाली है
दृश्य नेपथ्य में जारी है.

•

हवा, एक बहती नदी है

हवा, एक बहती नदी है
पहाड़ को छूती
अबाबील पर सवार
दौड़ती इंजिन के साथ
छुक-छुक आवाज को थाम लौटती
जमीन से तिनका उठाती
मुंडेर तक जा
गुप-चुप बैठ जाती
जेठ की दोपहर
सूखती जाती
हवा, जो एक बहती नदी है
तब
रेत सी हो जाती
आषाढ के पहले मेघ को
दुलारती
डांटती
बूंदो को थाम
धरती की डगर तक आती
माघ की सांझ
बर्फीली
दस्तानों मे आ घुसती
सूराख से
जल-सी रिस रिस
रजाई मे आ लेटती
हवा, जो एक बहती नदी है
तब
बर्फ सी हो जाती.

•

इन्तज़ार

मुझे
इन्तजार रहता है
बैसाख की एक शाम
डूबते सूरज से
उड़ते
रंगबिरंगे टुकड़ों का
घर लौटते पक्षियों का
और
इन्तजार रहता है
उन
दो लड़कियों का
जो छत पर
टहलने/बतियाने
सीढ़ीयां चढ रही होती हैं
बहुत ही धीरे-धीरे
आकृतियां
धुंधलाने लगती है
आगत चला आता है
चुपचाप
पक्षियों की
चहचहाट
खोने लगती हैं
सड़क पर
सहमा
लैम्प पोस्ट का बल्ब
भक् से
जल उठता है.

मैंने इस चिड़िया को
आशा नाम दिया है !

सांच भर ले कि
दर्द है थकान-ओ'-घुटन भी
तो अनायास हो
वह छोटा सा टीबा
बढ़कर
होने लगता है पहाड़
ये ही सब तो
हासिल है
इस थकी जिन्दगी में
पर
इनके होने को नकारता
सोचता हूं
चहुं ओर बिखरा है
फूलों का संसार
मैंने
इस चिडिया को
आशा नाम दिया है
बार-बार लेकर उड़ती है
छत को थामे
गार्डर तक
घोंसला बुनने का कच्चा माल
पर
आज तक
नहीं बन पाया
उसका नीड़ वहां
जानता हूं
फिर भी
वह चिडिया

अपनी कोशिश
जारी रखेगी
इसीलिए
उस चिड़िया को
आशा कहता हूं मै

•

सुशील पुरोहित

मेरा परिवेश मुझे अनुभवों से भरता रहा



अपने काव्य जीवन की छोटी परन्तु महत्वपूर्ण उम्र मे अपने आस पास से ही नही बल्कि जहा भी मै पहुच सका, कुछ पहाड़ियों पर चढते, कुछ ढलानो से उतरते, कही रेत मे धंसते तो कुछ शहरो की कोलाहल भरी सड़को पर चलते, जिनमे मेरा अपना शहर भी शामिल है, यू कि मेरा परिवेश मुझे अनुभवो से भरता रहा.

कभी कोई दृश्य सहसा उद्वेलित करता और लुप्त हो जाता, तो कही कोई अनुभूति विस्तार पाती, मेरे अनुभव मे कुछ नया जोडती चली जाती । अपने इन्ही अनुभवो को सहज आवेगो के साथ शब्दो मे बांधने का काम मैंने किया है फिर भी लगता है क्या जो कुछ मैंने अनुभूत किया उन सबको बाधा जा सकता था ? या कि इनको बाध पाना सभव भी है ?

इन सबके बावजूद जो कुछ मैंने लिखा, वह मेरा अपना अनुभव है और इन कविताओं के माध्यम से पाठक तक पहुचा है । अगर ये कविताए कही भी पाठक को अपने परिवेश तक मेरे अनुभव से बांध कर ले जाती हैं, व्यक्तित्व के विभिन्न आयामो और मानवीय जिजीविषा के विविध रूपों मे पाठक का साक्षात्कार करवा पाती है तभी इनकी सार्थकता है.

यही सब तो है जिसे मैंने अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है और इनके सम्प्रेषण को ही मैं सार्थक मानता हू अगर ये कविताए सहज नही हो पाई याकि मेरी अभिव्यक्ति में कुछ कमी रही तो उसका कारण मैं ही हू, और कुछ या अन्य कोई भी नही बल्कि वे 'शब्द' भी नही जिनसे कविताए रची गई है और जिन्हें क्रम भी मैंने ही दिया है

सुशील पुरोहित

शब्द जो तुमने कहे

आधी धूप
आधो छांव

बंधे हाथ
खुली कलम

टोहता हू शब्द जो तुमने कहे
संजोता उनको
क्षण-क्षण दरकता हूं.

•

घृणा और प्यार का अनुपात

घृणा और प्यार का अनुपात
शायद बराबर है
हम दोनों में
नहीं तो
क्यों उग आये
काटे-लम्बे और नुकीले
गले में मेरे
जो तुम्हारी जीभ पर थे.

•

एक सतरंगी किरण

अपने में खोया
एक सूरज
देखती है ओस की बूद

प्रतीक्षित है कि फूटे
एक सतरगी किरण
टकराये मुझसे
और होकर उर्ध्वमुखी
जग को
आलोकित कर दे

•

संजीदगी के अर्थ

स्याह
गहरी और उदास परछाईया
लिपटती है पांवों से
और चीखती है
गूंजती है घाटियों में सांस
और झर जाती है
सिहरती है देह को हर पोर
और मर जाती है
बदलते रहते हैं
सजीदगी के अर्थ.

•

छले जाते हैं हम

देह का अनिश्चित है आकार
बल्कि
अनिश्चित है आकार,
भाव–भंगिमा
चेहरों का भी,
फिर क्यों बदलती है हर देह
एक चेहरा प्रतिदिन/और नहीं बदलती
चेहरे पर जमी हथेलियां ?
हथेलियां,
जिन्हें हम नही देखते,
देखते है
बदला हुआ चेहरा
उलझते जाते है
बदलाव की प्रक्रिया में
हथेलियां जमती जाती है
प्रतिदिन मज़बूती पाती हैं
और
छले जाते है हम
देह/चेहरों के
अनिश्चित आकार से.



ढूँढता मैं आग

वर्षों रहा एक ही जंगल में
भटकता मन
बदलता रहा आसन

आकुल–व्याकुल
मन देख
एक रात किसी ने कहा–
(क्या वो तुम थे ?)
व्यर्थ प्रतीक्षा करते हो
वृक्षों की सरसराहट से
पत्थरों की टकराहट से/आग
अब पैदा नहीं होती
हजारो वर्ष बीते
इस अरण्य की आग को
'वह'
पी गया था

तब से
यह अरण्य ही मौन है

जाओ
उसे ढूंढो
लौटा दे उसे
जो पी गया था वह
ताकि मन तुम्हारा
भटकना छोड दे

तब ही से
मैं यायावर हूं.

वे परछाईयां जो बढ़ती हैं

रात भर !
चुपचाप !
बन्द कमरे में.

अभिशप्त
कामनाओं की घुटन
सिर्फ सांसों की राह निकलती है
शालीन मुस्कराहटें ओढे
दिन भर
बन्द दरवाजे थपथपाने के सिवाय
और कुछ भी तो कर नही पाता
शाम होते ही
मेरे जंगल में
रोज एक नया सियार रोता है,
अपने चेहरे पर टंगे नामो से
छलता हूं काले कौव्वे को
बैठना चाहता है जो मेरे सिर पर.
तब्दीलियां छलावा बन कर
फिर वैसी ही रात ले आती है
मैं देखता हूं डूबता सूरज.
मेरी सांसें भारी हो जाती हैं
फिर से
बनने-बढ़ने लगती हैं
परछाईयां चुपचाप !
बन्द कमरे में.



फिरकती हो तुम भी

हवा की दिशा देखती
फिरकती है
फिरकनी
खुश होता है बच्चा देखकर उसे
खुश होता है फिरकनी वाला
बच्चे की खुशी के वास्ते
फिरकती हो तुम भी
और
खुश होता है वह बच्चा
तुम्हे भी देखकर.

•

नन्ही चिड़िया

कुछ सहमी-सी
कुछ सिमटती-सी
एक भोली और नन्ही चिड़िया
रोज उतर आती है घर के
आंगन में
जाने क्या देख मेरी आंखों में
बस चुपचाप-सी उड़ जाती है.

•

उंगलियों का शोर

जलने लगा है एक दिया
अब
जमीन पर
उड़ने लगा है आसमान बन कर धुआं धुआं

चटखती उंगलियों के शोर में संत्रस्त
हो कर मैं
क्यों छोड़ दूंगा साथ—तुम ही कहो
मैं कब डरा
बहती नदी और गहरी झील में ?
चुप कब रहा
पहाड़ों की छांह में ?

तब नहीं था जो डर
अब भी है कहां ?
बस !
बन्द पड़े स्वरों को तोड़ती
चटखती है उंगलियां
यह उंगलियों का शोर—क्या है !
कुछ भी नहीं है-
दरवाज़े खोलने आने
उड़ने परिन्दों की
पांखों का शोर है।

पहाड़ी सीढ़ियों पर

सरसराते वृक्ष
झूलती लताएं
सूनी/पहाड़ी/सीढियों पर
हांफना :

अकेले में कभी
तुमने
इसे अनुभव किया है ?

भोगा है मैंने इस सुख को
पहाडी–अनगढ सीढियों पर हाफते
अतिरिक्त, सारी सांसें बाहर
निकल जाती है

अन्त तक
रह जाती है सिर्फ तू भीतर.

•

जल नहीं हूँ मैं

इन चोटियो मे
घूमता—बहता हुआ मै
घाटियों में गूंजता हूं

निकट के गहरे कुंएं में
झांकता हूं
हाफता हूं
पूछता हूं
कौन हो · ·· · ··· · तुम ?
पलट कर कोई मुझी से पूछता है
कौन हो······तुम ? कौन हो · ·तुम?

भागता मै दूर उससे
चीखता हूं.
नही हूं
जल नहीं हूं मैं ।

•

बालू रेत पर

अरी ओ
लौटती–बहती हवा
रोज रातों में तुम
यह क्या लिख जाती हो
बालू रेत पर.
क्या यह सब समुद्र के वास्ते है ?
नहीं आया समुद्र–इस बार भी
शहर मे मेरे
अरी ओ
लौटती–बहती हवा
तुम यह क्यों लिख जाती हो
बालू रेत पर.

•

मैं तुम्हें अपना रूप देना चाहता हूं

तुम से उठ रही लहरें
कितनी मृदुल है
छूते ही जो
बिखर जायेंगी
छोड देगी शेष
एक संकेत
मार्गदर्शी.
मैं लिपटना चाहता तुमसे
वायु से आकार लेती तुम
सिहरती जा रही हो.

मैं तुम्हे अपना रूप देना चाहता हूं
और देखो तुम
बिखरती जा रही हो.

•

तुम्हारे बहने से

वे तनते है
तुम–बहती हो उनके बीच

झुरझुरा कर गिर पड़ते है वे
तुम्हारे बहने से

फिर भी प्रतीक्षा करती हो
उनके तनने की
क्यों नहीं बहती हमेशा
बीच उनके
ओ हवा !

•

कारण तुम नहीं थे

एक ही रात में
पीले पत्तों के झड़ने
या
सख्त गर्मी से झुलसने
का कारण
तुम नहीं थे
मैंने सोचा—मैं यह जानता हूं
सुबह देखा
रात पूरी रात भर छलती रही मुझको

अगर नहीं तो
रात होना, रात का ढलना
स्वप्न हो कर ढलना है
समय का.



स्पर्श करते हैं हर सपने-अपने

वह बहती है
बहता रहता हूं मैं उसमें
और बहता रहता है मुझमें भी मेरा
सपना

डर था हमें
मैं उसमें
या
सपना मुझमें
बहना नहीं छोड़े

रात में सब कुछ निःशब्द रहता है
स्पर्श करते है हम
सपने–अपने
दो सपनो के बीच में बहती है वह.

•

शाम–१

शाम !
गहरी, कितनी प्यारी
फैली आकृतियां तुम्हारी,

शाम !
एक धुंधलके से निकल कर
चल दिये तुम.

शाम.
तोडती सन्नाटे
चू चू चिड़ियों की.

खिंच जाती है एक लकीर भीतर
बिम्बों–उभारों को गहराती अक्सर
शाम–कितनी प्यारी शाम.

•

शाम–२

शाम !
सर्द हवाओं मे
ज्यादा लाल दीखती है विभा

शाम !
डूबता है सूरज
सडक जहां समाप्त होती है.

शाम !
पसीने के बहते रेलों से बने निशान
खरोंच डालो.

जिस्म पर भी जमने दो विभा
का रंग

देखो
शाम !
सर्द हवाए और विभा का रंग

•

शाम से शाम तक की दूरी

सब ओर
धुंधलका ही धुंधलका है
पाव
रास्ता बदलते हैं
बनती जाती हैं पगडडियां कुछ नई,
रौंदी जाती है दिन भर
कुछ नुकीली शहरी
कुछ गंवई मुलायम घास

कितना बेस्वाद है सब कुछ
मुस्कराहटें अनात्मीय
व्यर्थ चीखना चौराहों पर
दूरी का संकेत कर रहे पत्थर में भी
अर्थ नहीं है
कहीं नही है कोई हरकत

ले कर मन पर शिलाखण्ड का भार
यूं ही तय होती जाती है
शाम से शाम तक की दूरियां हर बार.



कहानी गड़रिये की

गहरे में
उतरती
गूंजती
पहाड़ों में
गुम हो जाती है
बचाओ !
बचाओ !
की आवाज
बन जाती है
एक नई कहानी
गड़रिये की.
प्रतीक्षा
करता हूं
मैं
भेड़िये की
हर बार
(छोड़कर
घर बार)
जो आयेगा
फाड़ देने मुझे
खा लेने.

•

पाले का आतंक

उस सर्द रात में
रजाई को कंधे तक ओढ़े
उसने धीरे से कहा
लगता है पाला पड़ेगा
और जोर से हंस पड़ा
पत्तियों का पीलापन
धीरे धीरे
उसके मुंह पर उतर आया
धुंआ करने का कोई साधन
मेरे पास नही है।
क्या होगा अब–
कैसे होगा ?

•

वह सन्देह में बड़बड़ाती है !

किताबों पर जमी
गर्द झाड़ती वह
हमेशा बड़बड़ाती है
इस बार भी
बिना रोशनदान के कमरे में
वह थी
मैं था
और
किताबें थी
उसकी आखों का सन्देह
इस बार भी
किताबो मे उतर आया,
ऐसा होना वह जानती है
और
बड़बड़ाती है.

•

दूरियां

कदम ! कदम !
पांवों से बने
कदम
बढ़ाते हैं
घटाते है
दूरियां.
पार्क,
चौराहे
या सड़क पर
बीवी से
किसी की
बात करना
अच्छा लगता है

चोट
मन, गाल
या पत्थर
किसी पर पड़े
अन्तर नहीं पड़ता
कोई

वैसे भी
लोग
स्टील के फ्रेमों में
बन्द रहना
या
पोट्रेट और पोस्टर की
शक्ल में
दीवारों पर

चिपके रहना
ज्यादा अच्छा समझते हैं

आस्था-अनास्था
या
इस तरह की
कोई भी बात
कहीं भी
की जा सकती है
सिर्फ
की जाए
बैठक में ही
नहीं है
यह आवश्यक

फिर
पांवों से बने
कदम ही तो
बढ़ाते हैं
घटाते है
दूरियां.

अरविंद ओझा

□

सरकारी नौकरी

□

कहानी और कविता
के साथ कैमरे की
आख से भी
कुछ रच पाने की
आकांक्षा

□

नवलसागर कुआ, बीकानेर.

देवदीप

□

बैंक मे नौकरी

□

नाटक लिखते लिखते
या
खेलते खेलते
कविता से प्यार.

□

बैंक ऑफ बडोदा, अलवर.

सुशील पुरोहित

□

अध्यापकी

□

साहित्यिक और सास्कृतिक
गतिविधियो के आयोजनों
और पत्रकारिता के
बीच की दरार पर
सृजन मे सलग्न

□

गांधी चौक, जोधपुर.